eISSN:2581-4885
DEV SANSKRITI
VISHWAVIDYALAYA
PUBLICATION

BOOK REVIEW

दो सहस्र वर्षों बाद एक अभूतपूर्व प्रयास

पुनर्मुद्रण लेख – अखण्डज्योति पत्रिका, नवम्बर 1992

दिनांक. 7 - 10 नवंबर 1992 को अखिल विश्व गायत्री परिवार के देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के अंतर्गत प्रथम अश्वमेध यज्ञ जयपुर-राजस्थान में हुआ था। उसी काल में, अखंड ज्योति पत्रिका में वर्ष 1992 के नवंबर माह के पूरे अंक को 'अश्वमेध यज्ञ' को समर्पित किया गया था। [1] यह विशेषांक अपने आप में एक ग्रंथ है, जिसमें शास्त्र को आधार लेकर पिछले मध्यकाल में हुई भ्रांतियों को सुलझाते हुए, अश्वमेध के सही उद्देश्य एवं प्रयोजन को उद्घाटित किया गया है। इस विशेषांक का एक आलेख "दो सहस्र वर्षों बाद एक अभूतपूर्व प्रयास" का यहाँ पुनर्मुद्रण किया जा रहा है।

मनुष्य में देवत्व का उदय और राष्ट्र का नवनिर्माण - यह वैदिक संस्कृति, भारतीय संस्कृति, देव संस्कृति का मूल उद्देश्य है। यह प्रक्रिया सफल अश्वमेध के माध्यम से ही संपन्न होती है। अखिल विश्व गायत्री परिवार के संस्थापक पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी के मनुष्य में देवत्व के उदय के स्वप्न को साकार करने के लिए, गायत्री परिवार की संस्थापिका माता भगवती देवी शर्मा जी ने देव संस्कृति दिग्विजय अश्वमेधिक अभियान को अपने संरक्षण में क्रियान्वित किया और 108 अश्वमेध महायज्ञ की श्रंखला का संकल्प लिया। इस अभियान के अंतर्गत अभी तक 47 अश्वमेध संपन्न हो चुके है।

इतिहासविद् ब्रौंसके के अनुसार-अश्वमेध अनुष्ठान राजनीतिक दिग्विजय अभियान न होकर साँस्कृतिक दिग्विजय अभियान थे। इन महान यज्ञों का उद्देश्य राष्ट्र देवता के प्रति, जीवनमूल्यों के प्रति विश्वास जाग्रत करना, जिन्दगी जीने की विधियों का शिक्षण देना था। ये साँस्कृतिक एकता के लिए किए गए प्रयास-राष्ट्र को राजनीतिक भौगोलिक एवं भावनात्मक स्तर पर समर्थ सशक्त और दृढ़तम बनाया करते थे। शतपथ ब्राह्मण में राष्ट्र और अश्वमेध को परस्पर अभिन्न माना है।

भारतीय इतिहास पुराणों में जगह-जगह पर अनेक राजाओं ने अश्वमेध यज्ञ करवाएं थे जो उपरोक्त उद्देश्य की पूर्ति में थे। राजर्षि और प्रसिद्ध भक्त अम्बरीष, पृथु इत्यादि पौराणिक राजाओं के विवरण के साथ, भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, राजा युद्धिष्ठिर, जन्मेजय ने अश्वमेध यज्ञ करवाएं थे। जन-मेजय द्वारा अश्वमेध सम्पन्न किये जाने के बाद से अश्वमेध की परम्परा अस्त व्यस्त हो गई। इसी अस्त-व्यस्तता के परिणाम राष्ट्र की राजनीतिक विश्रृंखलता, समृद्धि ह्रास, जीवन मूल्यों के पतन के रूप में दिखाई देने लगे।

स्थिति की गम्भीरता समझ कर सेनानी पुष्यमित्र ने ईसा से 185 ई. पूर्व अश्वमेध अनुष्ठान सम्पन्न कर नए सिरे से राष्ट्र की समर्थता का आयोजन किया। पुष्यमित्र के बाद भारत की दृढ़ स्थिति अग्निमित्र, वसुमित्र तक बनी रही। बाद में काल प्रवाह में इसकी कड़िया बिखरीं, जिन्हें सँजोने सँवारने का अश्वमेध पराक्रम सम्राट चन्द्र गुप्त प्रथम के पुत्र तथा गुप्त वंश के द्वितीय सम्राट समुद्र गुप्त ने किया। समुद्रगुप्त के बाद जिन राजाओं द्वारा अश्वमेध सम्पन्न करने के विवरण मिलते हैं, वह वस्तुतः चिन्ह पूजा मात्र है। [2] उनमें न तो साँस्कृतिक वैभव है न भावात्मक विस्तार और न जन-जीवन को जीवन बोध करा सकने की सामर्थ्य।

अश्वमेध महायज्ञों की गायत्री परिवार की वर्तमान श्रृंखला सम्राट समुद्र गुप्त के बाद किया गया पहला वास्तविक और सफल प्रयास समझा जा सकता है। इन महायज्ञों के द्वारा न केवल अतीत भारत की ऐतिहासिक घटनाएँ स्वयं को दुहरा-एंगी बल्कि इनके सत्परिणामों के रूप में सतयुग का उदय, समृद्धि, ज्ञान, विज्ञान का विस्तार, विश्वराष्ट्र का उदय, वसुधैव कुटुम्बकम का भाव विस्तार जैसी चमत्कारी उपलब्धियों की प्रत्यक्ष अनुभूति हुए बिना न रहेगी।

- संपादक

PUBLISHED BY
Dev Sanskriti Vishwavidyalaya Gayatrikunj-Shantikunj, Haridwar, India

OPEN ACCESS
Copyright (c) 2024
, ,

देवभूमि भारत के स्वर्णिम अतीत के निर्माण में जो प्रक्रियाएँ क्रियाशील रहीं हैं-अश्वमेध उनमें से विशिष्टतम है। इसी की उपलब्धियों-सत्परिणामों की गौरवानुभूति देशवासियों को जगत-गुरु एवं ज्ञान-विज्ञान के चक्रवर्ती के रूप में हो सकी थी। देव संस्कृति के अध्ययन एवं अन्वेषण के लिए समर्पित पश्चिमी इतिहासकार ए-आर- बाशम के ग्रन्थ 'द वन्डर दैट वाज इण्डिया' (भार-जो आश्चर्य था) के पृष्ठ बताते हैं कि संसार के विभिन्न भू भागों के निवासियों में, यदि कहीं के लोगों ने अपने राष्ट्र को देवता और उपास्य माना है, तो वह देश भारत है। एमिल बेनवे-निस्ते के शोध अध्ययन "वैदिक इण्डिया" के अनुसार अश्वमेध राष्ट्रीय उपासना की वैदिक पद्धति के रूप में प्रचलित थी। इसे एक अनुष्ठान का रूप दिया गया था जिसे शासक श्रोत्रिय (मनीषी) और जन समूह सभी मिल-जुल कर सम्पन्न करते थें।

कतिपय इतिहासकारों ने अश्वमेध को-राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया माना है। इतिहासविद् सी.ए. ब्रौंसके अपने अध्ययन "ए हिस्ट्री ऑफ हिस्टोरिकल राइटिंग" में इस मान्यता को इतिहासकार की उथली दृष्टि करार देते हैं। उनके मुताबिक राष्ट्र-और विश्व के राजनीतिक एकीकरण के प्रयास वर्तमान युग में भी किए गए हैं, किए जा रहे हैं। पर उनके उन सुखद परिणामों की वैसी अनुभूति कभी नहीं हुई जैसी वैदिक भारत के निवासी अश्वमेध अनुष्ठान में किया करते थे। यूनान और रोम के विजय अभियान राजनीतिक एकता की दौड़ के सिवा और क्या थे? ब्रह्म परायण चाणक्य से करारी मात खाने वाले सिकन्दर और सेल्यूकस के मन इन्हीं राजनीतिक कल्पनाओं में रंगे थे। 'विश्व को एक करूंगा' हिटलर ने इसी संकल्प की आड़ में अपना ताना-बाना बुना था। बीसवीं सदी के दूसरे दशक में मार्क्स के साम्यवाद का नारा देकर स्टालिन ने रूस में छोटे पैमाने पर यही करतब दिखाने की कोशिशें कीं। लेकिन ये ढेरों प्रयास पुरुषार्थ अपनी चरम परिणति में अश्वमेध से उतना ही दूर रहे जितना आकाश से धरती।

इतिहासविद् ब्रौंसके के अनुसार-अश्वमेध अनुष्ठान राजनीतिक दिग्विजय अभियान न होकर साँस्कृतिक दिग्विजय अभियान थे। इतिहासवेत्ता ए.बार्थ के अनुसार इनके साँस्कृतिक स्वरूप का सबसे बड़ा प्रमाण इन यज्ञों में पुरोहित द्वारा किया जाने वाला नेतृत्व है। मनीषी बार्थ के अनुसार शासक इन यज्ञों का व्यवस्थापक भर होता था जबकि पुरोहित की भूमिका-संचालक की थी। इन महान यज्ञों का उद्देश्य राष्ट्र देवता के प्रति, जीवन-मूल्यों के प्रति विश्वास जाग्रत करना, जिन्दगी जीने की विधियों का शिक्षण देना था। ये साँस्कृतिक एकता के लिए किए गए प्रयास-राष्ट्र को राजनीतिक भौगोलिक एवं भावनात्मक स्तर पर समर्थ सशक्त और दृढ़तम बनाया करते थे। इन्हीं तथ्यों को स्वीकृत करते हुए शतपथ ब्राह्मण में राष्ट्र और अश्वमेध को परस्पर अभिन्न माना है-

श्रीवै राष्ट्रं। राष्ट्रं वै अश्वमेधः।
तस्मात राष्ट्री अश्वमेधेन यजेत।
सर्वा वै देवताः अश्वमेधे अन्वायत्ता।
तस्मात् अश्वमेध याजी सर्व दिशो अभिजयति।
-शतपथ ब्राह्मण 13/1/2/9/3

अर्थात्-समृद्धि ही राष्ट्र है। राष्ट्र ही अश्वमेध है। राष्ट्र परायण अश्वमेध करें। देवगण यज्ञ में सम्मिलित होते हैं। अश्वमेध का संयोजक सर्वजयी होता है।

प्राचीन भारत के इतिहास में ऐसे अनेक सर्वजयी नरेशों-लोकनायकों का विवरण प्राप्त होता है जिन्होंने अपने सत्प्रयत्नों द्वारा न केवल देव संस्कृति की गरिमा का विस्तार किया बल्कि राष्ट्रवासियों में देवत्व उदय करने में सफल हुए। महाभारत के आश्वमेधिक पर्व में सुवर्च्चा के पुत्र आविक्षित का विवरण मिलता है। धर्मानुरागी, धैर्यवान और जितेन्द्रिय नरेश आविक्षित-जिनका एक नाम कारंधम भी था, सौ अश्वमेध सम्पन्न किए। महाभारतकार उनके पराक्रम की-'ये इजेहयमेधानाँ शतेन विधिवत्प्रभः' कहकर प्रशंसा करते हैं। आविक्षित की भाँति पुराणों में मरुत्तमान्धता के अश्वमेधों की विस्तार से चर्चा की गई है।

श्रीमद्भागवत महापुराण में पृथ्वी को उपजाऊ बनाने की नवीन तकनीकों पर शोध करने वाले महाराज पृथु के सौ अश्वमेधों के संकल्प और उसके सत्परिणामों का विवरण मिलता है। भागवत्कर के अनुसार- अथादीक्षित राजा तु हयमेध शतेन सः। ब्रह्मावर्ते मनों क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती॥ -भागवत च. स्क. अ. 29/1

फिर पृथु ने एक सौ अश्वमेध यज्ञ करने का संकल्प किया जहाँ पश्चिम वाहिनी सरस्वती है ब्रह्मा और मनु का ब्रह्मावर्त क्षेत्र है।

पृथु की भाँति ऋषभदेव के पुत्र भरत जिनके नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा पूर्ण विधि के साथ सौ-सौ बार अश्वमेध सम्पन्न किए उनके वे सब यज्ञ साधारण नहीं हुए।

द्रव्य देश कालवय-श्शुद्धत्विग्विधोद्देशोपचितैः सर्वेरपि क्रतोर्भियथोपदेशं शतकृत्व इयाज। बल्कि द्रव्य देश-काल यौवन श्रद्धा ऋत्विक् इत्यादि द्वारा अतिशय बढ़-चढ़कर सम्पन्न हुए थे। -भागवत 5/4/16

राजा होकर भी अश्वमेध अनुष्ठान द्वारा ऋषित्व की उपलब्धि करने वाले-अम्बरीष का जिक्र करते हुए पुराणकार का कथन है-

ईजे ऽश्वमेर्धरधि या मीश्वरम्
महाविभूत्यो पचिताँग दक्षिणैः।
ततैर्वशिष्ठासित गौतमादिभिर्धन्वन्य
मिस्त्रोतम सौ सरस्वतीम॥
यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः सदस्या ऋत्विजों जनाः।
तुल्य लूपाँचा निमिषा व्यदृश्यन्त सुवाससः॥

10.36018/ijyr.v7i1.123

स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमर प्रियः।
श्रष्वद्धि रुपगायद्धिरुत्तम श्लोक चष्टितम्॥
-भागवत् 9/22, 23, 24

अर्थ- राजर्षि और प्रसिद्ध भक्त अम्बरीष अनेक अश्वमेधादि महायज्ञों द्वारा यज्ञपति भगवान की आराधना किया करते थे। वे यज्ञ, यज्ञ के अंग और दक्षिणा आदि में सम्पत्ति व्यय करते थे। इनके यज्ञ के प्रधान ऋत्विक् वशिष्ठ, असित, गौतम आदि महर्षि गण थे। धन्वदेष जहाँ सरस्वती की धारा बहती है, उसी पुण्य क्षेत्र में अम्बरीष यज्ञ किया करते थे। उनके यज्ञ में ऋत्विज् और सदस्यों की कान्ति देवताओं के समान ही दिव्य होती थी। यज्ञाराधन में तल्लीन रहने के कारण उनके पलक भी नहीं गिरते थे। यज्ञ द्वारा उत्पादित पवित्रता के प्रवाह से अम्बरीष की प्रजा में भी स्वर्ग सुख भोग की वासना नहीं रह गयी थी। सभी केवल निष्काम भाव से यज्ञ द्वारा यज्ञेश्वर भगवान की अर्चना, भक्ति में प्रवृत्त रहते थे।

राजा बलि के अश्वमेध अनुष्ठानों की चर्चा करते हुए श्री शुक्रदेव मुनि परीक्षित से कहते हैं-

देवेष्वथनिलीनेषु बलि वैराचनः पुरीम्।
वेवधानीमधिष्ठाय वशं नित्ये जगत्रयम्॥
तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः।
शतेन ह्य मेधानाँ मनुव्रतमयाजयत्॥
-भागवत् 8/15/33-34

यज्ञोत्पन्न तेज से युक्त राजा बलि को देख जब सभी देव अन्तर्द्धान हो गए या पलायन कर गए तब विरोचन पुत्र राजा बलि स्वर्ग के सिंहासन पर विराजमान हुए। तीनों लोक उनके आधीन हो गए। इसके उपरान्त शिष्यों पर अति स्नेह करने वाले भृगुवंशी ब्राह्मणों ने विश्व विजयी राजा बलि के इन्द्रत्व को चिरस्थाई बनाने के लिए उनसे एक सौ अश्वमेध कराए। बलि के यज्ञ का वर्णन नारद पुराण में भी मिलता है-

वुभुजे व्याहतैर्श्वय पबृद्ध श्रीर्महाबलः।
इयाज चाश्वमेधैः स प्रीणन् तत्परः॥

विश्वजित यज्ञ करके बलि अव्याहत ऐश्वर्य बढ़ी हुई लक्ष्मी और महान बल से सम्पन्न होकर त्रिभुवन का राज्य भोगने लगे। फिर उन्होंने भगवान की प्रीति के लिए तत्पर होकर अनेक अश्वमेध यज्ञ किए।

महाराज बाहु ने सातों द्वीपों में सात अश्वमेध यज्ञ किए। उनके राज्य काल में यज्ञ की महिमा से पृथ्वी अन्न-फल-फूलों से भरी रहती थी। देवराज इन्द्र समयानुसार वर्षा करते थे। पापाचारियों का अन्त होने के कारण, वहाँ की प्रजा धर्म से रक्षित रहती थी।

रावण के आतंक को धूल–धूसरित कर धरती पर स्वर्ग का अवतरण करने वाले मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम को अश्वमेध का यजन करने की सलाह देते हुए लक्ष्मण ने कहा-

अश्वमेधों महायज्ञ पावनः सर्व पावनाम्।
पावनस्तव दुर्धर्षो रोचताँ रघुनन्दन॥
- बा. रा. उत्तरकाण्ड 84/2,3

उस यज्ञ पुरुष के मन से चन्द्रमा तथा आँखों से सूर्य की उत्पत्ति हुई। और- 'तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे'। (यजु. 31/7) उसी सर्वहुत यज्ञ के कारण श्रग्वेद सामवेदादि की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार सृष्टि का क्रम आगे बढ़ता गया तीसरे चरण में इस विश्व की प्रकृति का विकास हुआ-

'यत्पुरुषेणा हविषा देवा यज्ञमतन्तत।
बसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धतिः॥

अर्थात्- जब देवों ने विराट पुरुष की हवि से यज्ञ प्रारंभ किया, तो उस यज्ञ में बसन्तऋतु ने घी, ग्रीष्मऋतु ने समिधा-ईंधन तथा शरदऋतु ने हविष्यान्न की भूमिका निभायी। इसी अन्तरिक्षीय यज्ञ के प्रभाव से भूमण्डल पर प्राणियों की सृष्टि एवं उनके पोषण का क्रम चला।

चौथा चरण पृथ्वी पर चलता रहता है-

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विषवड् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥

अर्थात्-ऊर्ध्वलोकों में तीन-चरण वाले पुरुष का एक चरण यहाँ हुआ। यह (यज्ञीय प्रक्रिया) अन्नाहार करने वाले (पशु-पक्षी आदि) तथा न करने वाले (वृक्ष-वनस्पति आदि) सभी को चारों ओर से व्याप्त करने स्थित है। स्पष्ट है कि प्राण चेतना का संचार प्रकृति में सतत् हो रहा है, उसका 'मेध'-हर क्षेत्र, हर घटक में चल रहा है। इस दिव्य प्राण संचरण प्रक्रिया रूप अश्वमेध पर ही यह सृष्टि का क्रम निर्भर करता है।

प्राण संचारक 'सविता'

सविता चेतनशक्ति का आदि स्रोत माना गया है। द्युलोक एवं अन्तरिक्ष के लिए 'सविता' की भूमिका का प्रतिनिधित्व कोई और करता होगा किंतु भूमण्डल के लिए तो 'सविता' की भूमिका 'सूर्य' ही निभा रहा है। वही प्रकृति का अश्वमेध चला रहा है-

'असौ वाऽदित्य ऽएकविछंशः सोऽश्वमेधः
शतपथ-13/3/3/3

अर्थात्-यह आदित्य ही सर्वश्रेष्ठ है वही अश्वमेध है। पृथ्वी पर प्राणचेतना का संचार सूर्य द्वारा होने के तथ्य का प्रकटीकरण अनेक शास्त्रों ने स्पष्ट शब्दों में किया है -

उद्यन्नु खलु ववा आदित्य सर्वाणि भूतानि, प्रणयति तस्मादेनं प्राण इत्याचक्षते। ऐत. ब्राह्मण 5/31

अर्थात्-निश्चित रूप से आदित्य देवता सूर्य उदित होते हुए सभी (प्राणियों) में नवचेतना का संचार करते हैं, इसलिए इन्हें प्राण स्वरूप कहा जाता है।

ऐतरेय ब्राह्मण मंत्र 1/19 में प्राणों वै सविता अर्थात्-सविता ही प्राण है कहकर उक्त मान्यता की पुष्टि की गयी है। और भी-

आदित्यो हवै प्राणः – प्रश्नोपनिषद् 1/5

अर्थात्-आदित्य ही निश्चित रूप से प्राण है।

प्रश्नोपनिषद् के ही मंत्र 1/8 में इस बात को बहुत स्पष्ट करते हुए लिखा गया है -

विष्वरुपं हरिणं जातवेदसं,परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः, प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः॥

अर्थात्- समस्त जगत का प्राणरूप सूर्य एक ही है। इस जगत में इसके समान कोई दूसरी जीवनी शक्ति नहीं है। संसार में उष्णता प्रकाश, जीवन प्रदान, ऋतु परिवर्तन आदि आवश्यकताओं को पूर्ण करता हुआ सम्पूर्ण सृष्टि का जीवनदाता प्राण ही सूर्य के रूप में उदित होता है।

सूर्य द्वारा इस प्रकार जगत में प्राण चेतना का संचार करते रहने के कारण उसे 'सोऽश्वमेधः' वही अश्वमेध है, ऐसा कहा गया। यही नहीं अश्वमेध या में सविता साधना तथा उसके प्रति आहुति प्रदान करने का भी विधान है। शतपथ ब्राह्मण का वह प्रकरण यहाँ दिया जा रहा है।

अथ सावित्रीमिष्टिं निर्वपति। सवित्रे प्रसवित्रे .....
सविता वै प्रसविता सविता मऽइमं यज्ञं प्रसुवादिति।"

अब सविता की इष्टि (आहुति) दी जाती है-सविता प्रसविता के लिए। सविता प्रेरक है-अर्थात्-सविता मेरे इस यज्ञ की प्रेरणा करें।

अथ द्वितीयाँ निर्वपति। सवित्रऽसवित्रे सविता वाऽआसविता सविता मऽइमं यज्ञमासुवाउदिति। (13/4/2/9)

अब दूसरी आहुति सविता आसविता के लिए दी जाती है। सविता आसविता है। इसलिए सविता देव, हमारे यज्ञ में प्रेरणा करें।

अथ तृतीयाँ निर्वपति। सवित्रे सत्यप्रसवाय — हर्वं सत्य प्रसवों यः सवितुः सत्येन में प्रसवेनेमं यज्ञं प्रसुवादिति।" (13/14/2/12)

अब तीसरी आहुति सविता सत्य का प्रसव करता है, के लिए है। यह 'सविता' सत्य प्रसव है। वह सत्य-प्रसव शक्ति द्वारा इस यज्ञ की प्रेरणा करें।

उक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि अश्वमेध मूलतः प्राण प्रक्रिया के विस्तार का ही पर्याय रहा है और इस भूमंडल में सूर्य ही प्राण संचार का केन्द्र है। इसीलिए राष्ट्रीय प्रयोजन से किए जाने वाले अश्वमेध यज्ञ में भी सविता की साधना एवं उसके निमित्त आहुतियों को ही प्रधानता दी जाती है।

सविता और गायत्री

सर्वविदित है कि गायत्री महामंत्र का देवता सविता है। सविता शक्ति के विशिष्ट-वाँछित प्रयोग के लिए गायत्री साधना का ही उल्लेख शास्त्रों में मिलता है। सूर्य प्राण रूप है, तो गायत्री प्राणों का त्राण करने वाली दिव्य प्राण विधा है। शास्त्र मतानुसार गायत्री और सविता को परस्पर पूरक माना गया है।

सा हैषा गयाँस्तेत्रे। प्राणा वै गयास्तत्प्राणाँस्तत्रे तद् यद् गयाँस्तेत्रे तस्मात् गायत्री नाम स यामेवामूमन्वाहैषैव सा स यस्माऽअन्वाह तस्य प्राणंस्त्रायते। -शतपथ ब्रा.-14/8/15/7

गायत्री इसीलिये कहते हैं कि वह 'गयों' का त्राण (रक्षा) करती है। 'गय' कहते हैं प्राण को। वह प्राणों की रक्षा करती है। आचार्य जिस सावित्री का उपदेश करता है वह यही गायत्री है। यह उसके प्राणों की रक्षा करती है, जिसको सिखाई जाती है।

अथर्ववेद में गायत्री विद्या की स्तुति 'स्तुता मया वरदा ------(19/71/1) प्रसिद्ध है। उसमें उसे 'वेदमाता प्रचोदयंताम्' अर्थात्-सही दिशा में प्रेरणा देने वाली कहा गया है। सविता को भी प्रसविता प्रेरणा-प्रदायक-उत्पत्तिकर्त्ता कहा गया है। सविता एवं गायत्री के लिए प्रयुक्त यह विशेषण भी समानार्थक ही है।

अथर्ववेद के उसी मंत्र में गायत्री को ब्रह्मवर्चस् प्रदायिनी कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण ने सूर्य को भी ब्रह्मवर्चस् कहा है- असौवाऽआदित्य ऽएकाकी चरत्येष ब्रहमवर्चसम् (13/2/6/10)। यह सूर्य एकाकी चलता रहता है, यह ब्रह्मवर्चस है।

ऊपर के प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि अश्वमेध भी मूलतः प्राणसंचार प्रक्रिया के रूप में प्रजापति द्वारा किया गया था। सूर्य विश्व में प्राण संचार करने वाला है तथा गायत्री भी प्राण विद्या ही है।

इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण के तेरहवें काण्ड के अलग-अलग मंत्रों (पूर्व पृष्ठों पर संदर्भ दिए जा चुके हैं) में अश्वमेध एवं सूर्य दोनों के लिए ब्रह्मवर्चस् संबोधनों का प्रयोग किया गया है। गायत्री महाविद्या भी ब्रह्मवर्चस् प्रदान करने वाली है।

इसीलिए अश्वमेध यज्ञ का प्रयोग जब राष्ट्र संगठन-उन्नयन के लिए किया जाता है, तो उसमें सूर्योपासना एवं गायत्री साधना

को विशेष स्थान देना आवश्यक होता है। वर्तमान अश्वमेध श्रृंखला के अंतर्गत गाँव-गाँव, घर-घर जाकर जन-जन को उनकी क्षमतानुसार गायत्री उपासना करने के लिए प्रेरित किया जा रहा है। अश्वमेध यज्ञ के लिए अनिवार्य देव संस्कृति दिग्विजय अभियान के क्रम में करोड़ों व्यक्ति दिव्यचेतना के अवतरण की पृष्ठभूमि बनाने के लिए गायत्री उपासना में संलग्न हो रहे हैं।

अश्वमेध यज्ञ के राष्ट्र संगठन-उन्नयन के पूर्व के प्रयोग

हे रघुनन्दन! सम्पूर्ण पापों से पवित्र करने वाला अश्वमेध यज्ञ है। हे दुर्धर्ष! यदि आपकी इच्छा हो तो वही यज्ञ कीजिए।

जब भगवान राम ने अपने अश्वमेध यज्ञ के बारे में वामदेव-जाबाल-कश्यप आदि ऋषिगणों से चर्चा की तो-

तेपिरामस्य तच्छुत्वा नमस्कृत्वा बृषध्वज।
अश्वमेधं द्विजाः सर्वे पूजयन्तिस्यसवशः॥
-बा. राम उत्तरकांड 94/7

वे ऋषि रामचन्द्र जी की वाणी का श्रवण कर भगवान शिव को प्रणाम कर, अश्वमेध यज्ञ की प्रशंसा करते हैं।

कुरु कुरु महाभाग धर्मारण्ये त्वमुत्तमम्।
दिने-दिने कोटि गुणं यावर्द्धष शतं भवेत्।
(स्क. पु. 3/35/14)

हे महाभाग रामचन्द्र जी! आप इस धर्मारण्य में उत्तम यज्ञानुष्ठान कीजिए। इस यज्ञ के प्रभाव से स्थल की पवित्रता सौ वर्ष तक बढ़ती चली जाएगी, जो मनुष्यों में कोटि-कोटि कोटि सद्गुणों का विकास और वृद्धि करती रहेगी।

काषिराज दिवोदास ने ब्रह्माजी के कथन को स्वीकार कर यज्ञ सामग्री इकट्ठी की। जिसकी सहायता से ब्रह्माजी ने अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किए-

तीर्थ दशाश्वमेधारण्तं प्रधितं जगती तले।
तदाप्रभूति तत्रासीद्वाराणस्या शुभप्रदम्॥
पुरा रुद्र सरोनाम तीर्थ कलाशोद्भव।
दशाश्वमेधकं पश्चाज्जातं विधि परिग्रहात्॥
-स्क. पु. 4/52/68/69

उस दिन से वाराणसी में दशाश्वमेध नाम से वह तीर्थ प्रख्यात हुआ। पहले उसका नाम रुद्र सरोवर था। दस अश्वमेध करने से ही उसका नाम दशाश्वमेध तीर्थ हुआ।

गर्ग संहिता अश्वमेध खण्ड 10/7 में भगवान् कृष्ण द्वारा उग्रसेन से अश्वमेध सम्पन्न कराने का वृत्तांत मिलता है। उन्हीं की प्रेरणा व व्यास के कथन के उपरान्त सम्राट युधिष्ठिर द्वारा अश्वमेध सम्पन्न किए जाने के विवरण महाभारत अश्वमेधिक पर्व 71/14 में मिलता है। इस विवरण के अनुसार युधिष्ठिर ने तीन अश्वमेध सम्पन्न किए। युधिष्ठिर की इस महान परम्परा का निर्वाह उनके उत्तराधिकारी परीक्षित (1/16/3) और जनमेजय ने किया।

जनमेजय द्वारा अश्वमेध सम्पन्न किये जाने के बाद से अश्वमेध की परम्परा अस्त व्यस्त हो गई। इसी अस्त-व्यस्तता के परिणाम राष्ट्र की राजनीतिक विश्रृंखलता, समृद्धि ह्रास, जीवन मूल्यों के पतन के रूप में दिखाई देने लगे। स्थिति की गम्भीरता समझ कर सेनानी पुष्यमित्र ने ईसा से 185 ई. पूर्व अश्वमेध अनुष्ठान सम्पन्न कर नए सिरे से राष्ट्र की समर्थता का आयोजन किया। उनके इस यज्ञ का वर्णन इपीग्राफिया इण्डिका में विस्तार से मिलता है।

पुष्यमित्र के बाद भारत की दृढ़ स्थिति अग्निमित्र वसुमित्र तक बनी रही। बाद में काल प्रवाह में इसकी कड़िया बिखरीं जिन्हें सँजोने संवारने का अश्वमेध पराक्रम सम्राट चन्द्र गुप्त प्रथम के पुत्र तथा गुप्त वंश के द्वितीय सम्राट समुद्र गुप्त ने किया। उन्होंने अश्वमेध अनुष्ठान के द्वारा समतट, डुवाक, कामरुप, नेपाल, कर्तपुर, पूर्वी एवं मध्य पंजाब, मालवा तथा पश्चिमी भारत के गण राज्यों, कुषाणों और शकों को एकता का शिक्षण दिया। अश्वमेध के प्रभाव से समूचा दक्षिण एकता सूत्र में बंधे बिना न रह सका। उनके शौर्य से अभिभूत होकर पश्चिमी इतिहासकार उन्हें नेपोलियन की उपाधि से सम्बोधित करते हैं। उनके द्वारा किए अश्वमेध की स्मृति का नवीकरण कुमारगुप्त का विलसंद अभिलेख पढ़कर तथा इपीग्राफिया इण्डिका के पृष्ठों को उलट-पुलट कर किया जा सकता है।

वर्तमान श्रृंखला सम्राट समुद्र गुप्त के बाद किया गया पहला वास्तविक और सफल प्रयास

समुद्रगुप्त के बाद जिन राजाओं द्वारा अश्वमेध सम्पन्न करने के विवरण मिलते हैं, वह वस्तुतः चिन्ह पूजा मात्र है। उनमें न तो साँस्कृतिक वैभव है न भावात्मक विस्तार और न जन-जीवन को जीवन बोध करा सकने की सामर्थ्य। अश्वमेध महायज्ञों की वर्तमान श्रृंखला सम्राट समुद्र गुप्त के बाद किया गया पहला वास्तविक और सफल प्रयास समझा जा सकता है। इन महायज्ञों के द्वारा न केवल अतीत भारत की ऐतिहासिक घटनाएँ स्वयं को दुहराएँगी बल्कि इनके सत्परिणामों के रूप में सतयुग का उदय, समृद्धि, ज्ञान, विज्ञान का विस्तार, विश्वराष्ट्र का उदय, वसुधैव कुटुम्बकम का भाव विस्तार जैसी चमत्कारी उपलब्धियों की प्रत्यक्ष अनुभूति हुए बिना न रहेगी।

सन्दर्भ

[1] माता भगवती देवी शर्मा (संपादक)। दो सहस्र वर्षों बाद एक अभूतपूर्व प्रयास। अखंड ज्योति पत्रिका, 1992;55(11):45–49।

[2] Chandel E. Performers and Sites of the Ashwamedha Yagya in Medieval India. Dev Sanskriti Interdis Internat J. 2024;23:34-48. DOI: 10.36018/dsiij.23.340